उसकी रोटी

हिन्दी ADDA

मोहन राकेश

उसकी रोटी

https://www.hindiadda.com/usaki-roti/

बालो को पता था कि अभी बस के आने में बहुत देर है, फिर भी पल्ले से पसीना पोंछते हुए उसकी आँखें बार-बार सडक़ की तरफ़ उठ जाती थीं। नकोदर रोड के उस हिस्से में आसपास कोई छायादार पेड़ भी नहीं था। वहाँ की ज़मीन भी बंजर और ऊबड़-खाबड़ थी-खेत वहाँ से तीस-चालीस गज़ के फ़ासले से शुरू होते थे। और खेतों में भी उन दिनों कुछ नहीं था। फ़सल कटने के बाद सिर्फ़ ज़मीन की गोड़ाई ही की गयी थी, इसलिए चारों तरफ़ बस मटियालापन ही नज़र आता था। गरमी से पिघली हुई नकोदर रोड का हल्का सुरमई रंग ही उस मटियालेपन से ज़रा अलग था। जहाँ बालो खड़ी थी वहाँ से थोड़े फासले पर एक लकड़ी का खोखा था। उसमें पानी के दो बड़े-बड़े मटकों के पास बैठा एक अधेड़-सा व्यक्ति ऊँघ रहा था। ऊँघ में वह आगे को गिरने को होता तो सहसा झटका खाकर सँभल जाता। फिर आसपास के वातावरण पर एक उदासी-सी नज़र डालकर, और अंगोछे से गले का पसीना पोंछकर, वैसे ही ऊँघने लगता। एक तरफ़ अढ़ाई-तीन फुट में खोखे की छाया फैली थी और एक भिखमंगा, जिसकी दाढ़ी काफ़ी बढ़ी हुई थी, खोखे से टेक लगाये ललचाई आँखों से बालो के हाथों की तरफ़ देख रहा था। उसके पास ही एक कुत्ता दुबककर बैठा था, और उसकी नज़र भी बालो के हाथों की तरफ़ थी।

बालो ने हाथ की रोटी को मैले आँचल में लपेट रखा था। वह उसे बद नज़र से बचाये रखना चाहती थी। रोटी वह अपने पति सुच्चासिंह ड्राइवर के लिए लायी थी, मगर देर हो जाने से सुच्चासिंह की बस निकल गयी थी और वह अब इस इन्तज़ार में खड़ी थी कि बस नकोदर से होकर लौट आये, तो वह उसे रोटी दे दे। वह जानती थी कि उसके वक़्त पर न पहुँचने से सुच्चासिंह को बहुत गुस्सा आया होगा। वैसे ही उसकी बस जालन्धर से चलकर दो बजे वहाँ आती थी, और उसे नकोदर पहुँचकर रोटी खाने में तीन-साढ़े तीन बज जाते थे। वह उसकी रात की रोटी भी उसे साथ ही देती थी जो वह आख़िरी फेरे में नकोदर पहुँचकर खाता था। सात दिन में छ: दिन सुच्चासिंह की ड्यूटी रहती थी, और छहों दिन वही सिलसिला चलता था। बालो एक-सवा एक बजे रोटी लेकर गाँव से चलती थी, और धूप में आधा कोस तय करके दो बजे से पहले सडक़ के किनारे पहुँच जाती थी। अगर कभी उसे दो-चार मिनट की देर हो जाती तो सुच्चासिंह किसी न किसी बहाने बस को वहाँ रोके रखता, मगर, उसके आते ही उसे डाँटने लगता कि वह सरकारी नौकर है, उसके बाप का नौकर नहीं कि उसके इन्तज़ार में बस खड़ी रखा करे। वह चुपचाप उसकी डाँट सुन लेती और उसे रोटी दे देती।

मगर आज वह दो-चार मिनट की नहीं, दो-अढ़ाई घंटे की देर से आयी थी। यह जानते हुए भी कि उस समय वहाँ पहुँचने का कोई मतलब नहीं, वह अपनी बेचैनी में घर से

चल दी थी-उसे जैसे लग रहा था कि वह जितना वक़्त सडक़ के किनारे इन्तज़ार करने में बिताएगी, सुच्चासिंह की नाराज़गी उतनी ही कम हो जाएगी। यह तो निश्चित ही था कि सुच्चासिंह ने दिन की रोटी नकोदर के किसी तन्दूर में खा ली होगी। मगर उसे रात की रोटी देना ज़रूरी था और साथ ही वह सारी बात बताना भी जिसकी वजह से उसे देर हुई थी। वह पूरी घटना को मन ही मन दोहरा रही थी, और सोच रही थी कि सुच्चासिंह से बात किस तरह कही जाए कि उसे सब कुछ पता भी चल जाए और वह ख़ामख़ाह तैश में भी न आये। वह जानती थी कि सुच्चासिंह का गुस्सा बहुत ख़राब है और साथ ही यह भी कि जंगी से उलटा-सीधा कुछ कहा जाए तो वह बग़ैर गंड़ासे के बात नहीं करता।

जंगी के बारे में बहुत-सी बातें सुनी जाती थीं। पिछले साल वह साथ के गाँव की एक मेहरी को भगाकर ले गया था और न जाने कहाँ ले जाकर बेच आया था। फिर नकोदर के पंडित जीवाराम के साथ उसका झगड़ा हुआ, तो उसे उसने कत्ल करवा दिया। गाँव के लोग उससे दूर-दूर रहते थे, मगर उससे बिगाड़ नहीं रखते थे। मगर उस आदमी की लाख बुराइयाँ सुनकर भी उसने यह कभी नहीं सोचा था कि वह इतनी गिरी हुई हरकत भी कर सकता है कि चौदह साल की जिन्दां को अकेली देखकर उसे छेडऩे की कोशिश करे। वह यूँ भी ज़िन्दां से तिगुनी उम्र का था और अभी साल-भर पहले तक उसे बेटी-बेटी कहकर बुलाया करता था। मगर आज उसकी इतनी हिम्मत पड़ गयी कि उसने खेत में से आती जिन्दां का हाथ पकड़ लिया?

उसने जिन्दां को नन्ती के यहाँ से उपले माँग लाने को भेजा था। इनका घर खेतों के एक सिरे पर था और गाँव के बाकी घर दूसरे सिरे पर थे। वह आटा गूँधकर इन्तज़ार कर रही थी कि जिन्दां उपले लेकर आये, तो वह जल्दी से रोटियाँ सेंक ले जिससे बस के वक़्त से पहले सडक़ पर पहुँच जाए। मगर जिन्दां आयी, तो उसके हाथ ख़ाली थे और उसका चेहरा हल्दी की तरह पीला हो रहा था। जब तक जिन्दां नहीं आयी थी, उसे उस पर गुस्सा आ रहा था। मगर उसे देखते ही उसका दिल एक अज्ञात आशंका से काँप गया।

"क्या हुआ है जिन्दो, ऐसे क्यों हो रही है?" उसने ध्यान से उसे देखते हुए पूछा।

जिन्दां चुपचाप उसके पास आकर बैठ गयी और बाँहों में सिर डालकर रोने लगी।

"ख़सम खानी, कुछ बताएगी भी, क्या बात हुई है?"

जिन्दां कुछ नहीं बोली। सिर्फ़ उसके रोने की आवाज़ तेज़ हो गयी।

"किसी ने कुछ कहा है तुझसे?" उसने अब उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"तू मुझे उपले-वुपले लेने मत भेजा कर," जिन्दां रोने के बीच उखड़ी-उखड़ी आवाज़ में बोली, "मैं आज से घर से बाहर नहीं जाऊँगी। मुआ जंगी आज मुझसे कहता था..." और गला रुँध जाने से वह आगे कुछ नहीं कह सकी।

"क्या कहता था जंगी तुझसे...बता...बाल..." वह जैसे एक बोझ के नीचे दबकर बोलीं, "ख़सम खानी, अब बोलती क्यों नहीं?"

"वह कहता था," जिन्दां सिसकती रही, "चल जिन्दां, अन्दर चलकर शरबत पी ले। आज तू बहुत सोहणी लग रही है...।"

"मुआ कमज़ात!" वह सहसा उबल पड़ी, "मुए को अपनी माँ रंडी नहीं सोहणी लगती? मुए की नज़र में कीड़े पड़ें। निपूते, तेरे घर में लडक़ी होती, तो इससे बड़ी होती, तेरे दीदे फटें!...फिर तूने क्या कहा?"

"मैंने कहा चाचा, मुझे प्यास नहीं है," जिन्दां कुछ सँभलने लगी।

"फिर?"

"कहने लगा प्यास नहीं है, तो भी एक घूँट पी लेना। चाचा का शरबत पिएगी तो याद करेगी।...और मेरी बाँह पकडक़र खींचने लगा।"

"हाय रे मौत-मरे, तेरा कुछ न रहे, तेरे घर में आग लगे। आने दे सुच्चासिंह को। मैं तेरी बोटी-बोटी न नुचवाऊँ तो कहना, जल-मरे! तू सोया सो ही जाए।...हाँ, फिर?"

"मैं बाँह छुड़ाने लगी, तो मुझे मिठाई का लालच देने लगा। मेरे हाथ से उपले वहीं गिर गये। मैंने उन्हें वैसे ही पड़े रहने दिया और बाँह छुड़ाकर भाग आयी।"

उसने ध्यान से जिन्दां को सिर से पैर तक देखा और फिर अपने साथ सटा लिया।

"और तो नहीं कुछ कहा उसने?"

"जब मैं थोड़ी दूर निकल आयी, तो पीछे से ही-ही करके बोला, 'बेटी, तू बुरा तो नहीं मान गयी? अपने उपले तो उठाकर ले जा। मैं तो तेरे साथ हँसी कर रहा था। तू इतना भी नहीं समझती? चल, आ इधर, नहीं आती, तो मैं आज तेरे घर आकर तेरी बहन से

शिकायत करूँगा कि जिन्दां बहुत गुस्ताख़ हो गयी है, कहा नहीं मानती।'...मगर मैंने उसे न जवाब दिया, न मुड़कर उसकी तरफ़ देखा। सीधी घर चली आयी।"

"अच्छा किया। मैं मुए की हड्डी-पसली एक कराकर छोड़ूँगी। तू आने दे सुच्चासिंह को। मैं अभी जाकर उससे बात करूँगी। इसे यह नहीं पता कि जिन्दां सुच्चा सिंह ड्राइवर की साली है, ज़रा सोच-समझकर हाथ लगाऊँ।" फिर कुछ सोचकर उसने पूछा, "वहाँ तुझे और किसी ने तो नहीं देखा?"

"नहीं। खेतों के इस तरफ़ आम के पेड़ के नीचे राधू चाचा बैठा था। उसने देखकर पूछा कि बेटी, इस वक़्त धूप में कहाँ से आ रही है, तो मैंने कहा कि बहन के पेट में दर्द था, हकीमजी से चूरन लाने गयी थी।"

"अच्छा किया। मुआ जंगी तो शोहदा है। उसके साथ अपना नाम जुड़ जाए, तो अपनी ही इज़्ज़त जाएगी। उस सिर-जले का क्या जाना है? लोगों को तो करने के लिए बात चाहिए।"

उसके बाद उपले लाकर खाना बनाने में उसे काफ़ी देर हो गयी। जिस वक़्त उसने कटोरे में आलू की तरकारी और आम का अचार रखकर उसे रोटियों के साथ खद्दर के टुकड़े में लपेटा, उसे पता था कि दो कब के बज चुके हैं और वह दोपहर की रोटी सुच्चासिंह को नहीं पहुँचा सकती। इसलिए वह रोटी रखकर इधर-उधर के काम करने लगी। मगर जब बिलकुल ख़ाली हो गयी, तो उससे यह नहीं हुआ कि बस के अन्दाज़े से घर से चले। मुश्किल से साढ़े तीन-चार ही बजे थे कि वह चलने के लिए तैयार हो गयी।

"बहन, तू कब तक आएगी?" जिन्दां ने पूछा।

"दिन ढलने से पहले ही आ जाऊँगी।"

"जल्दी आ जाना। मुझे अकेले डर लगेगा।"

"डरने की क्या बात है?" वह दिखावटी साहस के साथ बोली, "किसकी हिम्मत है जो तेरी तरफ़ आँख उठाकर भी देख सके? सुच्चासिंह को पता लगेगा, तो वह उसे कच्चा ही नहीं चबा जाएगा? वैसे मुझे ज़्यादा देर नहीं लगेगी। साँझ से पहले ही घर पहुँच जाऊँगी। तू ऐसा करना कि अन्दर से साँकल लगा लेना। समझी? कोई दरवाज़ा खटखटाए तो पहले नाम पूछ लेना।" फिर उसने ज़रा धीमे स्वर में कहा, "और अगर जंगी आ जाए, और मेरे लिए पूछे कि कहाँ गयी है, तो कहना कि सुच्चासिंह को बुलाने

गयी है। समझी?...पर नहीं। तू उससे कुछ नहीं कहना। अन्दर से जवाब ही नहीं देना समझी?"

वह दहलीज़ के पास पहुँची तो जिन्दां ने पीछे से कहा, "बहन, मेरा दिल धडक़ रहा है।"

"तू पागल हुई है?" उसने उसे प्यार के साथ झिडक़ दिया, "साथ गाँव है, फिर डर किस बात का है? और तू आप भी मुटियार है, इस तरह घबराती क्यों है?"

मगर जिन्दां को दिलासा देकर भी उसकी अपनी तसल्ली नहीं हुई। सडक़ के किनारे पहुँचने के वक़्त से ही वह चाह रही थी कि किसी तरह बस जल्दी से आ जाए जिससे वह रोटी देकर झटपट जिन्दां के पास वापस पहुँच जाए।

"वीरा, दो बजे वाली बस को गये कितनी देर हुई है?" उसने भिखमंगे से पूछा जिसकी आँखें अब भी उसके हाथ की रोटी पर लगी थीं। धूप की चुभन अभी कम नहीं हुई थी, हालाँकि खोखे की छाया अब पहले से काफ़ी लम्बी हो गयी थी। कुत्ता प्याऊ के त$ख्ते के नीचे पानी को मुँह लगाकर अब आसपास चक्कर काट रहा था।

"पता नहीं भैणा," भिखमंगे ने कहा, "कई बसें आती हैं। कई जाती हैं। यहाँ कौन घड़ी का हिसाब है!"

बालो चुप हो रही। एक बस अभी थोड़ी ही देर पहले नकोदर की तरफ़ गयी थी। उसे लग रहा था धूल के फैलाव के दोनों तरफ़ दो अलग-अलग दुनियाएँ हैं। बसें एक दुनिया से आती हैं और दूसरी दुनिया की तरफ़ चली जाती हैं। कैसी होंगी वे दुनियाएँ जहाँ बड़े-बड़े बाज़ार हैं, दुकानें हैं, और जहाँ एक ड्राइवर की आमदनी का तीन-चौथाई हिस्सा हर महीने ख़र्च हो जाता है? देवी अक्सर कहा करता था कि सुच्चासिंह ने नकोदर में एक रखैल रख रखी है। उसका कितना मन होता था कि वह एक बार उस औरत को देखे। उसने एक बार सुच्चासिंह से कहा भी था कि उसे वह नकोदर दिखा दे, पर सुच्चासिंह ने डाँटकर जवाब दिया था, "क्यों, तेरे पर निकल रहे हैं? घर में चैन नहीं पड़ता?सुच्चासिंह वह मरद नहीं है कि औरत की बाँह पकडक़र उसे सडक़ों पर घुमाता फिरे। घूमने का ऐसा ही शौक है, तो दूसरा ख़सम कर ले। मेरी तरफ़ से मुझे खुली छुट्टी है।"

उस दिन के बाद वह यह बात ज़बान पर भी नहीं लायी थी। सुच्चासिंह कैसा भी हो, उसके लिए सब कुछ वही था। वह उसे गालियाँ दे लेता था, मार-पीट लेता था, फिर भी

उससे इतना प्यार तो करता था कि हर महीने तनख़ाह मिलने पर उसे बीस रुपये दे जाता था। लाख बुरी कहकर भी वह उसे अपनी घरवाली तो समझता था! ज़बान का कड़वा भले ही हो, पर सुच्चासिंह दिल का बुरा हरगिज़ नहीं था। वह उसके जिन्दां को घर में रख लेने पर अक्सर कुढ़ा करता था, मगर पिछले महीने खुद ही जिन्दां के लिए काँच की चूड़ियाँ और अढ़ाई गज़ मलमल लाकर दे गया था।

एक बस धूल उड़ाती आकाश के उस छोर से इस तरफ़ को आ रही थी। बालो ने दूर से ही पहचान लिया कि वह सुच्चासिंह की बस नहीं है। फिर भी बस जब तक पास नहीं आ गयी, वह उत्सुक आँखों से उस तरफ़ देखती रही। बस प्याऊ के सामने आकर रुकी। एक आदमी प्याज़ और शलगम का गट्ठर लिये बस से उतरा। फिर कंडक्टर ने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द किया और बस आगे चल दी। जो आदमी बस से उतरा था, उसने प्याऊ के पास जाकर प्याऊ वाले को जगाया और चुल्लू से दो लोटे पानी पीकर मूँछें साफ़ करता हुआ अपने गट्ठर के पास लौट आया।

"वीरा, नकोदर से अगली बस कितनी देर में आएगी?" बालो ने दो क़दम आगे जाकर उस आदमी से पूछ लिया।

"घंटे-घंटे के बाद बस चलती है, माई।" वह बोला, "तुझे कहाँ जाना है?"

"जाना नहीं है वीरा, बस का इन्तज़ार करना है। सुच्चासिंह ड्राइवर मेरा घरवाला है। उसे रोटी देनी है।"

"ओ सुच्चा स्यों!" और उस आदमी के होंठों पर ख़ास तरह की मुस्कराहट आ गयी।

"तू उसे जानता है?"

"उसे नकोदर में कौन नहीं जानता?"

बालो को उसका कहने का ढंग अच्छा नहीं लगा, इसलिए वह चुप हो रही। सुच्चासिंह के बारे में जो बातें वह खुद जानती थी, उन्हें दूसरों के मुँह से सुनना उसे पसन्द नहीं था। उसे समझ नहीं आता था कि दूसरों को क्या हक है कि वे उसके आदमी के बारे में इस तरह बात करें?

"सुच्चासिंह शायद अगली बस लेकर आएगा," वह आदमी बोला।

"हाँ! इसके बाद अब उसी की बस आएगी।"

"बड़ा ज़ालिम है जो तुझसे इस तरह इन्तज़ार कराता है।"

"चल वीरा, अपने रास्ते चल!" बालो चिढक़र बोली, "वह क्यों इन्तज़ार कराएगा?" मुझे ही रोटी लाने में देर हो गयी थी जिससे बस निकल गयी। वह बेचारा सवेरे से भूखा बैठा होगा।"

"भूखा? कौन सुच्चा स्यों?" और वह व्यक्ति दाँत निकालकर हँस दिया। बालो ने मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया। "या साईं सच्चे!" कहकर उस आदमी ने अपना गट्ठर सिर पर उठा लिया और खेतों की पगडंडी पर चल दिया। बालो की दाईं टाँग सो गयी थी। उसने भार दूसरी टाँग पर बदलते हुए एक लम्बी साँस ली और दूर तक के वीराने को देखने लगी।

न जाने कितनी देर बाद आकाश के उसी कोने से उसे दूसरी बस अपनी तरफ़ आती नज़र आयी। तब तक खड़े-खड़े उसके पैरों की एडियाँ दुखने लगी थीं। बस को देखकर वह पोटली का कपड़ा ठीक करने लगी। उसे अफ़सोस हो रहा था कि वह रोटियाँ कुछ और देर से बनाकर क्यों नहीं लायी, जिससे वे रात तक कुछ और ताज़ा रहतीं। सुच्चासिंह को कड़ाह परसाद का इतना शौक है-उसे क्यों यह ध्यान नहीं आया कि आज थोड़ा कड़ाह परसाद ही बनाकर ले आये?...ख़ैर, कल गुर परब है, कल ज़रूर कड़ाह परसाद बनाकर लाएगी।...

पीछे गर्द की लम्बी लकीर छोड़ती हुई बस पास आती जा रही थी। बालो ने बीस गज़ दूर से ही सुच्चासिंह का चेहरा देखकर समझ लिया कि वह उससे बहुत नाराज़ है। उसे देखकर सुच्चासिंह की भवें तन गयी थीं और निचले होंठ का कोना दाँतों में चला गया था। बालो ने धडक़ते दिल से रोटी वाला हाथ ऊपर उठा दिया। मगर बस उसके पास न रुककर प्याऊ से ज़रा आगे जाकर रुकी।

दो-एक लोग वहाँ बस से उतरने वाले थे। कंडक्टर बस की छत पर जाकर एक आदमी की साइकिल नीचे उतारने लगा। बालो तेज़ी से चलकर ड्राइवर की सीट के बराबर पहुँच गयी।

"सुच्चा स्यां!" उसने हाथ ऊँचा उठाकर रोटी अन्दर पहुँचाने की चेष्टा करते हुए कहा, "रोटी ले ले।"

"हट जा," सुच्चासिंह ने उसका हाथ झटककर पीछे हटा दिया।

"सुच्चा स्यां, एक मिनट नीचे उतरकर मेरी बात सुन ले। आज एक ख़ास वज़ह हो गयी थी, नहीं तो मैं...।"

"बक नहीं, हट जा यहाँ से," कहकर सुच्चासिंह ने कंडक्टर से पूछा कि वहाँ का सारा सामन उतर गया है या नहीं।

"बस एक पेटी बाकी है, उतार रहा हूँ," कंडक्टर ने छत से आवाज़ दी।

"सुच्चा स्यां, मैं दो घंटे से यहाँ खड़ी हूँ," बालो ने मिन्नत के लहज़े में कहा, "तू नीचे उतरकर मेरी बात तो सुन ले।"

"उतर गयी पेटी?" सुच्चासिंह ने फिर कंडक्टर से पूछा।

"हाँ, चलो," पीछे से कंडक्टर की आवाज़ आयी।

"सुच्चा स्यां! तू मुझ पर नाराज़ हो ले, पर रोटी तो रख ले। तू मंगलवार को घर आएगा तो मैं तुझे सारी बात बताऊँगी।" बालो ने हाथ और ऊँचा उठा दिया।

"मंगलवार को घर आएगा तेरा...," और एक मोटी-सी गाली देकर सुच्चासिंह ने बस स्टार्ट कर दी।

दिन ढलने के साथ-साथ आकाश का रंग बदलने लगा था। बीच-बीच में कोई एकाध पक्षी उड़ता हुआ आकाश को पार कर जाता था। खेतों में कहीं-कहीं रंगीन पगडियाँ दिखाई देने लगी थीं। बालो ने प्याऊ से पानी पिया और आँखों पर छींटे मारकर आँचल से मुँह पोंछ लिया। फिर प्याऊ से कुछ फासले पर जाकर खड़ी हो गयी। वह जानती थी, अब सुच्चासिंह की बस जालन्धर से आठ-नौ बजे तक वापस आएगी। क्या तब तक उसे इन्तज़ार करना चाहिए?सुच्चासिंह को इतना तो करना चाहिए था कि उतरकर उसकी बात सुन लेता। उधर घर में जिन्दां अकेली डर रही होगी। मुआ जंगी पीछे किसी बहाने से आ गया तो? सुच्चासिंह रोटी ले लेता, तो वह आधे घंटे में घर पहुँच जाती। अब रोटी तो वह बाहर कहीं न कहीं खा ही लेगा, मगर उसके गुस्से का क्या होगा? सुच्चासिंह का गुस्सा बेजा भी तो नहीं है। उसका मेहनती शरीर है और उसे कसकर भूख लगती है। वह थोड़ी और मिन्नत करती, तो वह ज़रूर मान जाता। पर अब?

प्याऊ वाला प्याऊ बन्द कर रहा था। भिखमंगा भी न जाने कब का उठकर चला गया था। हाँ, कुत्ता अब भी वहाँ आसपास घूम रहा था। धूप ढल रही थी और आकाश में उड़ते

चिड़ियों के झुंड सुनहरे लग रहे थे। बालो को सडक़ के पार तक फैली अपनी छाया बहुत अजीब लग रही थी। पास के किसी खेत में कोई गभरू जवान खुले गले से माहिया गा रहा था :

"बोलण दी थां कोई नां

जिहड़ा सानूँ ला दे दित्ता

उस रोग दा नां कोई नां।"

माहिया की वह लय बालो की रग-रग में बसी हुई थी। बचपन में गरमियों की शाम को वह और बच्चों के साथ मिलकर रहट के पानी की धार के नीचे नाच-नाचकर नहाया करती थी, तब भी माहिया की लय इसी तरह हवा में समाई रहती थी। साँझ के झुटपुटे के साथ उस लय का एक ख़ास ही सम्बन्ध था। फिर ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गयी, ज़िन्दगी के साथ उस लय का सम्बन्ध और गहरा होता गया। उसके गाँव का युवक लाली था जो बड़ी लोच के साथ माहिया गाया करता था। उसने कितनी बार उसे गाँव के बाहर पीपल के नीचे कान पर हाथ रखकर गाते सुना था। पुष्पा और पारो के साथ वह देर-देर तक उस पीपल के पास खड़ी रहती थी। फिर एक दिन आया जब उसकी माँ कहने लगी कि वह अब बड़ी हो गयी है, उसे इस तरह देर-देर तक पीपल के पास नहीं खड़ी रहना चाहिए। उन्हीं दिनों उसकी सगाई की भी चर्चा होने लगी। जिस दिन सुच्चासिंह के साथ उसकी सगाई हुई, उस दिन पारो आधी रात तक ढोलक पर गीत गाती रही थी। गाते-गाते पारो का गला रह गया था फिर भी वह ढोलक छोडऩे के बाद उसे बाँहों में लिये हुए गाती रही थी-

"बीबी, चन्नण दे ओहले ओहले किऊँ खड़ी,

नीं लाडो किऊँ खड़ी?

मैं तां खड़ी सां बाबल जी दे बार,

मैं कनिआ कँवार,

बाबल वर लोड़िए।

नीं जाइए, किहो जिहा वह लीजिए?

जिऊँ तारिआँ विचों चन्द,

चन्दा विचों नन्द,

नन्दां विचों कान्ह-कन्हैया वर लीड़िए...!"

वह नहीं जानती थी कि उसका वर कौन है, कैसा है, फिर भी उसका मन कहता था कि उसके वर की सूरत-शक्ल ठीक वैसी ही होगी जैसी कि गीत की कडिय़ाँ सुनकर सामने आती हैं। सुहागरात को जब सुच्चासिंह ने उसके चेहरे से घूँघट हटाया, तो उसे देखकर लगा कि वह सचमुच बिलकुल वैसा ही कान्ह-कन्हैया वर पा गयी है। सुच्चासिंह ने उसकी ठोड़ी ऊँची की, तो न जाने कितनी लहरें उसके सिर से उठकर पैरों के नाख़ूनों में जा समाईं। उसे लगा कि ज़िन्दगी न जाने ऐसी कितनी सिहरनों से भरी होगी जिन्हें वह रोज़-रोज़ महसूस करेगी और अपनी याद में सँजोकर रखती जाएगी।

"तू हीरे की कणी है, हीरे की कणी," सुच्चासिंह ने उसे बाँहों में भरकर कहा था।

उसका मन हुआ था कि कहे, यह हीरे की कणी तेरे पैर की धूल के बराबर भी नहीं है, मगर वह शरमाकर चुप रह गयी थी।

"माई, अँधेरा हो रहा है, अब घर जा। यहाँ खड़ी क्या कर रही है?" प्याऊ वाले ने चलते हुए उसके पास रुककर कहा।

"वीरा, यह बस आठ-नौ बजे तक जालन्धर से लौटकर आ जाएगी न?" बालो ने दयनीय भाव से उससे पूछ लिया।

"क्या पता कब तक आए? तू उतनी देर यहाँ खड़ी रहेगी?"

"वीरा, उसकी रोटी जो देनी है।"

"उसे रोटी लेनी होती, तो ले न लेता? उसका तो दिमाग़ ही आसमान पर चढ़ा रहता है।"

"वीरा, मर्द कभी नाराज़ हो ही जाता है। इसमें ऐसी क्या बात है?"

"अच्छा खड़ी रह, तेरी मर्ज़ी। बस नौ से पहले क्या आएगी!"

"चल, जब भी आए।"

प्याऊ वाले से बात करके वह निश्चय खुद-ब-खुद हो गया जो वह अब तक नहीं कर पायी थी-कि उसे बस के जालन्धर से लौटने तक वहाँ रुकी रहना है। जिन्दां थोड़ा

डरेगी-इतना ही तो न? जंगी की अब दोबारा उससे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ सकती। आख़िर गाँव की पंचायत भी तो कोई चीज़ है। दूसरे की बहन-बेटी पर बुरी नज़र रखना मामूली बात है? सुच्चासिंह को पता चल जाए, तो वह उसे केशों से पकडक़र सारे गाँव में नहीं घसीट देगा?मगर सुच्चासिंह को यह बात न बताना ही शायद बेहतर होगा। क्या पता इतनी-सी बात से दोनों में सिर-फुटव्वल हो जाए? सुच्चासिंह पहले ही घर के झंझटों से घबराता है, उसे और झंझट में डालना ठीक नहीं। अच्छा हुआ जो उस वक़्त सुच्चासिंह ने बात नहीं सुनी। वह तो अभी कह रहा था कि मंगलवार को घर नहीं आएगा। अगर वह सचमुच न आया, तो? और अगर उसने गुस्से होकर घर आना बिलकुल छोड़ दिया, तो? नहीं, वह उसे कभी कोई परेशान करनेवाली बात नहीं बताएगी। सुच्चासिंह ख़ुश रहे, घर की परेशानियाँ वह ख़ुद सँभाल सकती है।

वह ज़रा-सा सिहर गयी। गाँव का लोटूसिंह अपनी बीबी को छोडक़र भाग गया था। उसके पीछे वह टुकड़े-टुकड़े को तरस गयी थी। अन्त में उसने कुएँ में छलाँग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। पानी से फूलकर उसकी देह कितनी भयानक हो गयी थी?

उसे थकान महसूस हो रही थी, इसलिए वह जाकर प्याऊ के त$ख्ते पर बैठ गयी। अँधेरा होने के साथ-साथ खेतों की हलचल फिर शान्त होती जा रही थी। माहिया के गीत का स्थान अब झींगुरों के संगीत ने ले लिया था। एक बस जालन्धर की तरफ़ से और एक नकोदर की तरफ़ से आकर निकल गयी। सुच्चासिंह जालन्धर से आख़िरी बस लेकर आता था। उसने पिछली बस के ड्राइवर से पता कर लिया था कि अब जालन्धर से एक ही बस आनी रहती है। अब जिस बस की बत्तियाँ दिखाई देंगी, वह सुच्चासिंह की ही बस होगी। थकान के मारे उसकी आँखें मुँदी जा रही थीं। वह बार-बार कोशिश से आँखें खोलकर उन्हें दूर तक के अँधेरे और उन काली छायाओं पर केन्द्रित करती जो धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थीं। ज़रा-सी भी आवाज़ होती, तो उसे लगता कि बस आ रही है और वह सतर्क हो जाती। मगर बत्तियों की रोशनी न दिखाई देने से एक ठंडी साँस भर फिर से निढाल हो रहती।

दो-एक बार मुँदी हुई आँखों से जैसे बस की बत्तियाँ अपनी ओर आती देखकर वह चौंक गयी-मगर बस नहीं आ रही थी। फिर उसे लगने लगा कि वह घर में है और कोई ज़ोर-ज़ोर से घर के किवाड़ खटखटा रहा है। जिन्दां अन्दर सहमकर बैठी है। उसका चेहरा हल्दी की तरह पीला हो रहा है।...रहट के बैल लगातार घूम रहे हैं। उनकी घंटियों की ताल के साथ पीपल के नीचे बैठा एक युवक कान पर हाथ रखे माहिया गा रहा है।...ज़ोर की धूल उड़ रही है जो धरती और आकाश की हर चीज़ को ढके ले रही है। वह

अपनी रोटीवाली पोटली को सँभालने की कोशिश कर रही है, मगर वह उसके हाथ से निकलती जा रही है।...प्याऊ पर सूखे मटके रखे हैं जिनमें एक बूँद भी पानी नहीं है। वह बार-बार लोटा मटके में डालती है, पर उसे ख़ाली पाकर निराश हो जाती है।...उसके पैरों में बिवाइयाँ फूट रही हैं। वह हाथ की उँगली से उन पर तेल लगा रही है, मगर लगाते-लगाते ही तेल सूखता जाता है।...जिन्दां अपने खुले बाल घुटनों पर डाले रो रही है। कह रही है, "तू मुझे छोडक़र क्यों गयी थी? क्यों गयी थी मुझे छोडक़र? हाय, मेरा परांदा कहाँ गया?मेरा परांदा किसने ले लिया?"

सहसा कन्धे पर हाथ के छूने से वह चौंक गयी।

"सुच्चा स्यां!" उसने जल्दी से आँखों को मल लिया।

"तू अब तक घर नहीं गयी?" सुच्चासिंह त$ख्ते पर उसके पास ही बैठ गया। बस ठीक प्याऊ के सामने खड़ी थी। उस वक़्त उसमें एक सवारी नहीं थी। कंडक्टर पीछे की सीट पर ऊँघ रहा था।

"मैंने सोचा रोटी देकर ही जाऊँगी। बैठे-बैठे झपकी आ गयी। तुझे आये बहुत देर तो नहीं हुई?"

"नहीं, अभी बस खड़ी की है। मैंने तुझे दूर से ही देख लिया था। तू इतनी पागल है कि तब से अब तक रोटी देने के लिए यहीं बैठी है?"

"क्या करती? तू जो कह गया था कि मैं घर नहीं आऊँगा!" और उसने पलकें झपककर अपने उमड़ते आँसुओं को सुखा देने की चेष्टा की।

"अच्छा ला, दे रोटी, और घर जा! जिन्दां वहाँ अकेली डर रही होगी।" सुच्चासिंह ने उसकी बाँह थपथपा दी और उठ खड़ा हुआ।

रोटीवाला कटोरा उससे लेकर सुच्चासिंह उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए उसे बस के पास तक ले आया। फिर वह उचककर अपनी सीट पर बैठ गया। बस स्टार्ट करने लगा, तो वह जैसे डरते-डरते बोली, "सुच्चा स्यां, तू मंगल को घर आएगा न?"

"हाँ, आऊँगा। तुझे शहर से कुछ मँगवाना हो, तो बता दे।"

"नहीं, मुझे मँगवाना कुछ नहीं है।"

बस घरघराने लगी, तो वह दो क़दम पीछे हट गयी। सुच्चासिंह ने अपनी दाढ़ी-मूँछ पर हाथ फेरा, एक डकार लिया और उसकी तरफ़ देखकर पूछ लिया, "तू उस वक़्त क्या बात बताना चाहती थी?"

"नहीं, ऐसी कोई ख़ास बात नहीं थी। मंगल को घर आएगा ही..."

"अच्छा, अब जल्दी से चली जा, देर न कर। एक मील बाट है...!"

"...सुच्चा स्यां, कल गुर परब है। कल मैं तेरे लिए कड़ाह परसाद बनाकर लाऊँगी...।"

"अच्छा, अच्छा..."

बस चल दी। बालो पहियों की धूल में घिर गयी। धूल साफ़ होने पर उसने पल्ले से आँखें पोंछ लीं और तब तक बस के पीछे की लाल बत्ती को देखती रही जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गयी।